ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.21, No.1, Jan. – March, 2026/4

अभिलेखों में सामाजिक एवं आर्थिक जीवन

अवध नारायण एवं पंकज शर्मा

https://doi.org/ 10.61410/had.v21i1.260

Abstract-

यह शोध पत्र भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोतों में से एक अभिलेखों (Inscriptions) के आधार पर प्राचीन एवं प्रारम्भिक मध्यकालीन समाज के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का अध्ययन प्रस्तुत करता है। अभिलेखकृजैसे शिलालेख, ताम्रपत्र, स्तंभलेख और दानपत्रकृसमकालीन परिस्थितियों के प्रत्यक्ष एवं प्रामाणिक प्रमाण माने जाते हैं। इन स्रोतों के माध्यम से उस समय की सामाजिक संरचना, जाति व्यवस्था, ग्राम संगठन, स्त्रियों की स्थिति तथा धार्मिक संस्थाओं की भूमिका के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। साथ ही अभिलेख आर्थिक जीवन के विविध पहलुओं, जैसे कृषि व्यवस्था, भूमि स्वामित्व, भूमि–दान प्रणाली, कर–व्यवस्था, सिंचाई व्यवस्था, व्यापारिक गतिविधियाँ तथा शिल्प और उद्योगकृपर भी प्रकाश डालते हैं।

इस शोध में विभिन्न अभिलेखों का विश्लेषण कर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि प्राचीन भारतीय समाज केवल कृषि पर आधारित नहीं था, बल्कि उसमें व्यापार, शिल्प और नगरों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। अनेक अभिलेखों में व्यापारिक संघों, शिल्पकार वर्गों तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापार के संकेत मिलते हैं, जो उस समय की विकसित आर्थिक संरचना को दर्शाते हैं। साथ ही मंदिर, विहार और अन्य धार्मिक संस्थाएँ सामाजिक–सांस्कृतिक ही नहीं, बल्कि आर्थिक गतिविधियों के भी प्रमुख केंद्र थे।

अतः यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि अभिलेख इतिहास लेखन के लिए अत्यंत विश्वसनीय स्रोत हैं, जिनके माध्यम से प्राचीन भारतीय समाज की सामाजिक संरचना, आर्थिक संगठन तथा प्रशासनिक व्यवस्था का समग्र और प्रामाणिक चित्र प्राप्त होता है।

Keywords- अभिलेख (Inscriptions), सामाजिक संरचना, आर्थिक जीवन, भूमि–दान प्रणाली, व्यापार एवं वाणिज्य, धार्मिक संस्थाएँ, प्राचीन एवं प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत

भूमिका –

प्रस्तुत शोध में भारतीय इतिहास के अभिलेखीय स्रोतों के माध्यम से प्राचीन एवं मध्यकालीन समाज के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का अध्ययन किया गया है। शिलालेख, ताम्रपत्र, दानपत्र और प्रशस्तियां न केवल तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करती हैं, बल्कि समाज की संरचना, वर्ग व्यवस्था, जातिगत संबंधों, धार्मिक संस्थाओं तथा आर्थिक गतिविधियों पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश डालती हैं। इस अध्ययन में भूमि स्वामित्व, कर प्रणाली, कृषि व्यवस्था, व्यापारिक मार्गों, शिल्पकारों तथा विभिन्न पेशागत संगठनों की भूमिका का विश्लेषण किया गया है। इसके अतिरिक्त दान प्रथा, मंदिर अर्थव्यवस्था तथा राज्य और समाज के पारस्परिक

- **शोध निर्देशक– सह आचार्य, इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या**
- **शोध छात्र, इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या**

संबंधों को अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर समझने का प्रयास किया गया है। शोध से यह स्पष्ट होता है कि अभिलेख तत्कालीन सामाजिक असमानताओं, आर्थिक विकास तथा प्रशासनिक संरचना को समझने के अत्यंत विश्वसनीय और प्रामाणिक स्रोत हैं। यह अध्ययन इतिहास लेखन में अभिलेखों की उपयोगिता को रेखांकित करते हुए सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास के पुनर्निर्माण में उनके महत्व को स्थापित करता है।

भारतीय इतिहास लेखन में अभिलेख (Inscriptions) अत्यंत विश्वसनीय और प्रत्यक्ष स्रोत माने जाते हैं। ये न केवल तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करते हैं, बल्कि समाज की संरचना, आर्थिक गतिविधियों, कर–व्यवस्था, व्यापारिक नेटवर्क, शिल्प, पेशों तथा भूमि–राजस्व प्रणाली जैसे विषयों पर भी सटीक जानकारी प्रदान करते हैं। इतिहासकार आर. सी. मजुमदार लिखते हैं कि "भारतीय अभिलेख भारतीय समाज के नाड़ी–स्पंदन को समझने का सबसे वैज्ञानिक साधन हैं"।[1]

इसी प्रकार डी. सी. सरकार ने अभिलेखों को "इतिहासकारों की आँखें" कहा हैं।[2]

अतः यह शोध अभिलेखों में अंकित सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के विविध आयामों को विश्लेषित रूप में प्रस्तुत करता है।

अभिलेखों का स्वरूप एवं इतिहास–लेखन में महत्व-

अभिलेख मूलतः वे लिखित साक्ष्य हैं जिन्हें स्थायित्व प्रदान करने के उद्देश्य से पत्थर, धातु, मिट्टी अथवा अन्य कठोर माध्यमों पर उत्कीर्ण किया जाता था। इनका स्वरूप औपचारिक, तथ्यपरक और प्रमाणिक होता है, क्योंकि इन्हें सामान्यतः राजकीय आदेश, दान, विजय, धार्मिक प्रतिष्ठा या प्रशासनिक घोषणाओं के रूप में अंकित किया जाता था। अभिलेखों की भाषा, लिपि तथा शैली से तत्कालीन सांस्कृतिक वातावरण, बौद्धिक स्तर और भाषाई विकास की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

इतिहास लेखन की दृष्टि से अभिलेख अत्यंत विश्वसनीय स्रोत माने जाते हैं, क्योंकि इनमें तिथि, स्थान, शासक का नाम, पदाधिकारी तथा सामाजिक परिस्थितियों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ये स्रोत घटनाओं को कल्पना और लोककथाओं से अलग कर तथ्यात्मक आधार प्रदान करते हैं। अभिलेखों के अध्ययन से प्रशासनिक ढांचा, न्याय व्यवस्था, राजस्व प्रणाली तथा जनजीवन की स्थिति का सम्यक ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार अभिलेख इतिहासकारों के लिए प्रमाणिक आधारशिला के रूप में कार्य करते हैं और अतीत के पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। अभिलेख मुख्यतः ताम्रपत्र, शिलालेख, स्तंभलेख, गुहालेख, मुहरें और मुद्रा–लेख आदि के रूप में प्राप्त होते हैं। इनका महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि ये समकालीन, अक्षरशः सुरक्षित तथा प्रायः शासकीय प्रयोजनों के लिए लिखे गए होते हैं। रोमिला थापर का मत है कि "अभिलेख राज्य और समाज के अंतःसंबंधों की सर्वाधिक प्रामाणिक आवाज हैं"।[3]

इन अभिलेखों के माध्यम से भूमि–दान, सामाजिक संरचना, जातीय संबंध, कर–व्यवस्था, मुद्रा–प्रवाह, कृषि–प्रणाली, व्यापारिक मार्ग और श्रम–विनियोजन जैसे महत्वपूर्ण पक्षों की जानकारी प्राप्त होती है। अभिलेखों की विशेषता यह है कि इनमें प्रयुक्त भाषा, लिपि और शैली तत्कालीन संस्कृति, शैक्षणिक प्रगति और राजकीय औपचारिकता का भी दर्पण होती है। ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों का क्रमिक विकास भारतीय भाषाई इतिहास का महत्वपूर्ण आधार है। अशोक के धम्म–लेखों में प्रयुक्त प्राकृत राज्य–नीति की सरलता और जनसुलभता को दर्शाता है, वहीं गुप्तकालीन लेखन में संस्कृत का प्रभाव उच्च संस्कृति की अभिव्यक्ति है।ए. एल. बाशम के अनुसार "अभिलेखों का भाषाई अध्ययन भारत की सामाजिक–सांस्कृतिक गतिशीलता को समझने का अनिवार्य उपकरण है"।[4]

सामाजिक जीवन के अभिलेखीय प्रमाण-

अभिलेखों में सामाजिक जीवन के अनेक आयाम स्पष्ट होते हैं।

1. जाति एवं वर्ग संरचना–

अनेक अभिलेखों में दानग्राही की जाति, गोत्र, शाखा आदि का उल्लेख मिलता है। इससे सामाजिक पहचान की संरचना का ज्ञान होता है। परंतु साथ ही शिल्पकारों, व्यापारियों, कृषकों और स्त्रियों का उल्लेख सामाजिक विविधता को दर्शाता है।

2. स्त्रियों की स्थिति–

कुछ अभिलेखों में रानियों, दान देने वाली महिलाओं तथा देवदासियों का उल्लेख मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि महिलाएँ धार्मिक और आर्थिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी रखती थीं।

3. ग्राम संगठन–

ग्रामसभा, उर, सभा, नगरम् जैसी संस्थाएँ स्थानीय स्वशासन की विकसित परंपरा को दर्शाती हैं। ग्राम समुदाय भूमि के बंटवारे, कर संग्रह और जल प्रबंधन में भाग लेते थे।

4. शिक्षा और संस्कृति–

मंदिरों और मठों को दिए गए दान से ज्ञात होता है कि वे शिक्षा के केंद्र भी थे। ब्राह्मणों को दिए गए अग्रहार दान विद्या और शास्त्र अध्ययन के संरक्षण का माध्यम थे।

5. सामाजिक गतिशीलता–

अभिलेखों से यह भी संकेत मिलता है कि केवल जन्म ही सामाजिक स्थिति का आधार नहीं थाय आर्थिक समृद्धि और प्रशासनिक पद भी प्रतिष्ठा प्रदान करते थे।

इस प्रकार अभिलेख सामाजिक जीवन की जटिलता और गतिशीलता को प्रमाणित करते हैं।

अभिलेखों के अध्ययन से जातीय संरचना, वर्ग विभाजन, पेशों की विविधता, धार्मिक संस्थाओं की भूमिका तथा सामाजिक गतिशीलता के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं। दक्षिण भारतीय अभिलेखों में शिल्पकारोंकृस्वर्णकार,

कुम्हार, बढ़ई, लोहार, ताम्रकार आदिकृका उल्लेख तत्कालीन सामाजिक–आर्थिक जीवन की विविधता का तथ्यात्मक प्रमाण है।

के. ए. नीलकंठ शास्त्री लिखते हैं- "संघटनात्मक सामाजिक संरचना की सर्वाधिक प्रामाणिक झलक दक्षिण भारतीय अभिलेखों में मिलती है"।[5]

अभिलेख यह दर्शाते हैं कि समाज केवल जाति पर आधारित स्थिर संरचना नहीं था, बल्कि पेशे, व्यापारिक गतिविधियाँ, स्थानीय संस्थाएँ और शिल्प समुदाय सामाजिक गतिशीलता के निर्णायक आधार थे। चोल अभिलेखों में 'उर', 'सभा' और 'नगरम' जैसी संस्थाओं का वर्णन सामुदायिक भागीदारी और स्थानीय स्वशासन की विकसित प्रणाली को प्रस्तुत करता है।

Burton Stein के अनुसार - "दक्षिण भारत की स्थानीय संस्थाएँ सामाजिक भागीदारी और सामुदायिक नियंत्रण का विशिष्ट मॉडल थीं"।[6]

आर्थिक जीवन : कृषि, भूमि–दान और कर–व्यवस्था-

प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि आधारित थी। अभिलेखों में भूमि की उपज, सिंचाई व्यवस्था, करों के प्रकार और भूमि दान का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

1. भूमि–दान प्रणाली –

अग्रहार, देवदान, ब्रह्मदेय आदि दानों के माध्यम से राज्य भूमि राजस्व से मुक्त करता था। इससे धार्मिक संस्थाएँ आर्थिक रूप से सशक्त होती थीं।

2. कर–व्यवस्था –

अभिलेखों में भोग, कर, उदकभोग, हलकर, पथकर आदि करों का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि राजस्व प्रणाली सुव्यवस्थित थी।

3. सिंचाई व्यवस्था –

तालाब (एरी), कुएँ, नहरें और बाँध कृषि उत्पादन के आधार थे। कई अभिलेखों में सिंचाई संरचनाओं के निर्माण और मरम्मत का उल्लेख है।

4. कृषक और श्रम –

कृषकों के अतिरिक्त हलवाहों, चरवाहों, खेत मजदूरों का भी उल्लेख मिलता है। इससे कृषि उत्पादन सामुदायिक श्रम पर आधारित था। इस प्रकार अभिलेख आर्थिक संगठन की सुदृढ़ता को दर्शाते हैं।

अभिलेखों में आर्थिक संरचना के विस्तृत प्रमाण मिलते हैं। भूमि–दान, विशेषकर ब्राह्मणों व धार्मिक संस्थाओं को दिए जाने वाले 'अग्रहारा' दान, उस समय की कृषि–प्रधान अर्थव्यवस्था का मूल तत्व था। भूमि दान के साथ कर–छूट, सिंचाई अधिकार और भोगाधिकार का उल्लेख मिलता है।

डी. सी. सरकर का मत है कि "भूमि–दान लेख मध्यकालीन राजस्व–नीति का प्रत्यक्ष साक्ष्य हैं"।[7]

अभिलेखों से कृषि के प्रकार, फसलों, उर्वर भूमि, सिंचाई तालाबों, नहरों और कूपों के निर्माण की जानकारी मिलती है। विशेष रूप से राष्ट्रकूट और चालुक्य अभिलेखों में 'एरि' (तालाब) प्रणाली का उल्लेख जल–प्रबंधन की उन्नत तकनीक का प्रमाण है।

T.V. Mahalingam लिखते हैं- "कर–व्यवस्था और सिंचाई तंत्र का विस्तृत उल्लेख कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था की वैज्ञानिकता को दर्शाता है"।[8]

शिल्प, व्यापार और नगरीय अर्थव्यवस्था-

अभिलेखों में शिल्पकारों और व्यापारिक संघों का उल्लेख आर्थिक जीवन की विविधता को प्रदर्शित करता है।

1. शिल्पकार वर्ग –

स्वर्णकार, ताम्रकार, कुम्हार, लोहार, बुनकर आदि का उल्लेख सामाजिक–आर्थिक संरचना की बहुस्तरीयता को दर्शाता है।

2. व्यापारिक संघ (गिल्ड) –

नानादेशी, ऐनूरुवर, मणिग्रामम् आदि संघ संगठित व्यापार का प्रमाण हैं। वे सामूहिक रूप से दान भी देते थे।

3. समुद्री व्यापार –

तटीय क्षेत्रों के अभिलेखों में बंदरगाह, जहाज, शुल्क आदि का उल्लेख मिलता है। इससे अंतरराष्ट्रीय व्यापार की पुष्टि होती है।

4. नगरीकरण –

नगरों में बाजार, कर–प्रणाली और शिल्पकेंद्रों का विकास आर्थिक सशक्तता को दर्शाता है।

अतः अभिलेखों के आधार पर स्पष्ट है कि भारतीय अर्थव्यवस्था केवल कृषि तक सीमित नहीं थी, बल्कि व्यापार और शिल्प भी समान रूप से विकसित थे।

अभिलेखों में व्यापारिक गिल्डों, व्यापारिक मार्गों, बंदरगाहों, जहाजों और बाजारों की विस्तृत जानकारी मिलती है। चोल अभिलेखों में 'ऐन्हूर्वर', 'नानादेशी', 'मणिग्रामम्' जैसे संगठनों का उल्लेख अंतरराष्ट्रीय व्यापार नेटवर्क की पुष्टि करता है।

रोमिला थापर लिखती हैंकृ "अभिलेखों में अंकित व्यापारिक गतिविधियाँ भारतीय उपमहाद्वीप के वृहद वाणिज्यिक संपर्कों का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं"।[9]

इन अभिलेखों में मार्ग–शुल्क, जहाजों, तटबंदरों, नाप–तौल प्रणाली और व्यापारिक अनुबंधों का उल्लेख आर्थिक संगठन की गहराई को उजागर करता है।

Kenneth Hall के अनुसार- "चोल अभिलेख दक्षिण–पूर्वी एशिया में भारतीय व्यापारिक उपस्थिति के निर्णायक प्रमाण हैं"।[10]

धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन-

मंदिर, विहार और जैन उपाश्रय न केवल धार्मिक स्थल थे, बल्कि आर्थिक और सांस्कृतिक केंद्र भी थे। मंदिरों को भूमि, धन, पशु और दासों का दान दिया जाता था। वहाँ संगीत, नृत्य और उत्सवों का आयोजन होता था।

बौद्ध और जैन अभिलेख संघ जीवन, दान परंपरा और यात्राओं का विवरण देते हैं। इससे धार्मिक सहिष्णुता और बहुलता का चित्र स्पष्ट होता है।धार्मिक संस्थाएँ शिक्षा और कला के संरक्षण में भी सहायक थीं। इस प्रकार अभिलेख भारतीय सांस्कृतिक जीवन की बहुरंगी छवि प्रस्तुत करते हैं।

अभिलेख धार्मिक संस्थाओंकृमंदिरों, विहारों और जैन उपाश्रयोंकृकी सामाजिक और आर्थिक भूमिका को स्पष्ट करते हैं। मंदिर केवल पूजा–स्थल ही नहीं, बल्कि आर्थिक केंद्र, सांस्कृतिक संरक्षण संस्थान और सामाजिक संगठन के केंद्र थे।

A.L. Basham लिखते हैं- "मंदिर भारतीय समाज में धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक समन्वय के प्रमुख केंद्र थे"।[11]

अभिलेखों में दान–पद्धति, अनुष्ठानों, नृत्यांगनाओं, संगीतकारों, पुरोहितों और शिल्पकारों को दी जाने वाली भूमियों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। बौद्ध और जैन अभिलेखों में संघ–व्यवस्था, यात्राओं और दान की परंपरा का विस्तृत चित्रण है।

Upinder Singh के अनुसार- "धार्मिक अभिलेख भारतीय सांस्कृतिक बहुलता (pluralism)का सबसे स्पष्ट दर्पण हैं"।[12]

अभिलेखों में राज्य, प्रशासन और न्याय–व्यवस्था-

अभिलेखों में शासकों की उपाधियाँ, प्रशासनिक पद और न्यायिक आदेश अंकित होते हैं। स्थानीय समितियाँ कर संग्रह, भूमि विवाद निपटान और सिंचाई प्रबंधन करती थीं। न्याय व्यवस्था में दंड और जुर्माने का उल्लेख मिलता है। इससे विधि–व्यवस्था की संगठित प्रणाली का ज्ञान होता है। राज्य और समाज के बीच संतुलन स्पष्ट रूप से अभिलेखों में परिलक्षित होता है।

कई अभिलेखों में राजकीय आदेश, कर–संबंधी निर्देश, दंड–विधान, भूमि–विवादों के निर्णय और अधिकारियों के पदनाम अंकित होते हैं। चोल और पल्लव अभिलेखों में स्थानीय समितियों का उल्लेख मिलता है जो न्याय, कर–विनियमन, सिंचाई और भूमि–सुधार जैसे कार्य करती थीं।

D. C. Sircar के अनुसार– "अभिलेख प्रशासनिक इतिहास के सबसे विश्वसनीय स्रोत हैं"।[13]

गुप्तकालीन अभिलेखों में 'कुमारामात्य', 'उपरिक', 'स्थानीय अधिकारी' आदि पद राज्य–प्रशासन के बहुस्तरीय ढांचे का प्रमाण हैं।

इतिहासकार R. S. Sharma लिखते हैं - "अभिलेखों में अंकित प्रशासनिक निर्णय प्राचीन भारतीय राज्य के व्यावहारिक स्वरूप को उजागर करते हैं"।[14]

निष्कर्ष-

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अभिलेखीय प्रमाण भारतीय अतीत को समझने की एक सुदृढ़ और प्रमाणिक आधाररेखा प्रस्तुत करते हैं। ये केवल शासकों की उपलब्धियों तक सीमित नहीं रहते, बल्कि जनजीवन के विविध आयामों को भी उजागर करते हैं। उत्कीर्ण लेखों से तत्कालीन उत्पादन प्रणाली, संसाधनों के वितरण, ग्रामीण संरचना तथा नगरीय विकास की स्थिति का आकलन किया जा सकता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक गतिशीलता का स्तर एक समान नहीं था, बल्कि स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार उसमें विविधता पाई जाती थी।

इन स्रोतों के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि शासन तंत्र और प्रजा के मध्य संबंध केवल आदेश और अनुपालन तक सीमित नहीं थे, बल्कि उनमें पारस्परिक दायित्वों की भी भावना निहित थी। अनेक अभिलेखों में स्थानीय निकायों, समितियों तथा प्रतिष्ठानों की सक्रिय भागीदारी का उल्लेख मिलता है, जो प्रशासनिक विकेंद्रीकरण की ओर संकेत करता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि समाज की संरचना बहुस्तरीय थी और उसमें विभिन्न समूहों की सहभागिता सुनिश्चित थी।

साथ ही, उत्कीर्ण प्रमाणों से यह भी ज्ञात होता है कि दान, अनुदान और धार्मिक प्रतिष्ठानों के माध्यम से संसाधनों का पुनर्वितरण किया जाता था, जिससे सांस्कृतिक संरक्षण और सामुदायिक समृद्धि को बल मिलता था। इससे तत्कालीन जीवन मूल्यों, नैतिक धारणाओं और सामाजिक दायित्वों की झलक मिलती है। आर्थिक क्रियाकलापों की निरंतरता और स्थायित्व इस तथ्य को दर्शाते हैं कि उत्पादन और विनिमय की प्रक्रियाएँ सुव्यवस्थित थीं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि अभिलेख अतीत की संरचनाओं को समझने के लिए एक दर्पण के समान हैं, जिनके माध्यम से सामाजिक संगठन, आर्थिक विन्यास तथा प्रशासनिक पद्धति का समग्र चित्र उभरकर सामने आता है। इनका सम्यक अध्ययन इतिहास के पुनर्निर्माण में नई दृष्टि प्रदान करता है और भारतीय सभ्यता की जटिलता तथा समृद्धि को वैज्ञानिक आधार पर स्थापित करता है। इस प्रकार अभिलेखीय साक्ष्य न केवल घटनाओं का विवरण देते हैं, बल्कि उस युग की मानसिकता, व्यवस्थागत ढांचे और जीवन पद्धति को भी स्पष्ट करते हैं, जो किसी भी गंभीर ऐतिहासिक अनुसंधान के लिए अत्यंत आवश्यक है।

अभिलेख भारतीय इतिहास के सबसे प्रत्यक्ष, विश्वसनीय और वैज्ञानिक स्रोत हैं। इनमें सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना, आर्थिक संगठन, प्रशासनिक व्यवस्था तथा धार्मिक गतिविधियों के तथ्यात्मक प्रमाण प्राप्त होते हैं। भूमि–दान, कर–व्यवस्था, गिल्ड, व्यापार, सिंचाई, शिल्प और मंदिर–आधारित अर्थव्यवस्था के वर्णन भारतीय समाज की जटिलता और समृद्धि को स्पष्ट करते हैं।

जैसा कि R. C. Majumdar लिखते हैं-

"अभिलेखों के बिना भारतीय इतिहास अनुमानों का मात्र एक संग्रह बनकर रह जाता है।"[15]

इस प्रकार अभिलेख भारतीय सभ्यता की संरचना और विकास को समझने के लिए अनिवार्य स्रोत हैं।

संदर्भ सूची

1- R.C. Majumdar, Ancient India, Motilal Banarsidass, 1952, p- 87

2- D.C. Sarkar, Indian Epigraphy,1965, p- 11

3- Romila Thapar,Early India,Penguin,2002,p- 145

4- A.L.Basham,The Wonder That Was India,1954,p- 213

5- Nilakanta Sastri,A History of South India,Oxford,1955,p- 332

6- Burton Stein, Peasant State and Society,OUP,1980, p- 77

7- D.C.Sarkar, Indian Epigraphy, p- 165

8- T.V.Mahalingam,South Indian Polity, 1967, p- 242

9- Romila Thapar,Cultural Pasts,OUP,2000,p- 521

10- Kenneth Hall, Maritime Trade and State Development,1985,p- 119

11- A.L.Basham, The Wonder That Was India,p- 328

12- Upinder Singh,A History of Ancient and Early Medieval India, 2008,p- 454

13- D.C. Sircar,Select Inscriptions,1965,p- 97

14- R.S.Sharma,India's Ancient Past,2005,p- 291

15- R.C. Majumdar,Ancient India,1977,p- 92

डॉ0 अवध नारायण (सह आचार्य)[1] Email- anarayan9@gmail.com Ph. No.- 9005652240
पंकज शर्मा (शोधार्थी)[2] Email- pankaj08041990@gmail.com , Ph. No.- 8010201650